काबुलीवाला

रवींद्रनाथ टैगोर

मेरी पाँच बरस की छोटी लड़की मिनी क्षण-भर भी बात किए बिना नहीं रह सकती। जन्म लेने के बाद भाषा सीखने में उसने सिर्फ़ एक ही साल लगाया होगा। उसके बाद जब तक वह जगी रहती है अपना एक मिनट का समय भी मौन में नष्ट नहीं करती। उसकी माँ अकसर डाँटकर उसका मुँह बंद कर देती है, किंतु मैं ऐसा नहीं कर पाता। मिनी का चुप रहना मुझे इतना अस्वाभाविक लगता है कि मैं ज़्यादा देर तक सहन नहीं कर पाता और यही कारण है कि मेरे साथ वह कुछ ज़्यादा उत्साह से ही बातचीत किया करती है।

सुबह मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद को लिखना शुरू ही किया था कि मिनी आ गई और बोलने लगी, “बाबूजी, रामदयाल दरबान है न, वो काक को कौआ कहता था—वह कुछ जानता नहीं न बाबूजी?”

दुनिया की भाषाओं की भिन्नता के बारे में मेरे कुछ कहने के पहले ही उसने दूसरा प्रसंग छेड़ दिया, “देखो बाबूजी, भोला कहता था, आकाश में हाथी सूँड से पानी फेंकता है इसी से बरसा होती है। अच्छा बाबूजी, भोला झूठ-मूठ की बकवास बहुत करता है न? ख़ाली बक-बक किया करता है, रात-दिन बकता रहता है।”

इस विषय में मेरी राय जानने के लिए ज़रा भी इंतज़ार न करके वह चट से बड़े नरम स्वर में एक जटिल सवाल पूछ बैठी, “अच्छा बाबूजी, माँ तुम्हारी कौन लगती है?”

मैंने मन ही मन कहा, 'साली'। और मुँह से बोला, “मिनी, तू जा, जाकर भोला के साथ खेल। मुझे अभी कुछ काम है, अच्छा।”

तब उसने मेरी टेबल के बग़ल में पैरों के पास बैठकर अपने दोनों घुटनों और हाथों को हिला-हिलाकर जल्दी-जल्दी मुँह चलाकर 'अटकन-बटकन दही चटकन' खेलना शुरू कर दिया, जबकि मेरे उपन्यास के सत्रहवें परिच्छेद में प्रताप सिंह उस समय कंचनमाला को लेकर अँधेरी रात में कारागार के ऊँचे झरोखे से नीचे बहती हुई नदी में कूद रहा था।

मेरा घर सड़क के किनारे पर है। सहसा मिनी 'अटकल-बटकन' खेल छोड़कर खिड़की के पास दौड़ गई और बड़े ज़ोर से चिल्लाने लगी, “काबुलीवाला! ओ काबुलीवाला!”

मैले-कुचैले ढीले कपड़े पहने, सिर पर साफ़ा बाँधे, कंधे पर मेवों की झोली लटकाए, हाथ में दो-चार अँगूर की पिटारियाँ लिए एक लंबा-सा काबुली धीमी चाल से सड़क पर जा रहा था। उसे देखकर बेटी के मन में कैसा भावोदय हुआ, यह बताना कठिन है। उसने ज़ोर से उसे पुकारना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, अभी झोली कंधे में लटकाए एक आफ़त सिर पर आ खड़ी होगी और मेरा सत्रहवाँ परिच्छेद आज भी पूरा होने से रह जाएगा।

लेकिन मिनी के चिल्लाने पर ज्यों ही काबुली ने हँसते हुए उसकी तरफ़ मुँह फेरा और वह मकान की तरफ़ आने लगा, त्यों ही मिनी जानबूझकर भीतर भाग गई। फिर उसका पता ही नहीं लगा कि कहाँ ग़ायब हो गई। उसके मन में एक अंधविश्वास-सा बैठ गया था कि उस झोली के अंदर तलाश करने पर उसकी जैसी और भी दो-चार जीती-जागती लड़कियाँ निकल आएँगी।

इधर काबुली ने आकर मुस्कराते हुए मुझे सलाम किया और खड़ा हो गया। मैंने सोचा, यद्यपि प्रतापसिंह और कंचनमाला की हालत अत्यंत संकटपूर्ण है, फिर भी घर में बुलाकर इससे कुछ न ख़रीदना अच्छा न होगा।

कुछ सामान ख़रीदा गया। उसके बाद मैं उससे इधर-उधर की बातें करने लगा। अब्दुर्रहमान, रूस, अंग्रेज़, सीमांत-रक्षा इत्यादि विषयों में गपशप होने लगी।

अंत में उठकर जाते वक़्त, उसने अपनी खिचड़ी भाषा में मुझसे पूछा, “बाबू साब, आपकी बिटिया कहाँ गई?”

मिनी के मन से बेकार का डर दूर करने के इरादे से मैंने उसे भीतर से बुलवा लिया। वह मुझसे बिलकुल सटकर काबुली के मुँह और झोली की तरफ़ संदिग्ध दृष्टि से देखती हुई खड़ी रही। काबुली ने झोली में से किसमिस और ख़ूबानी निकालकर मिनी को देना चाहा, परंतु उसने कुछ भी नहीं लिया, बल्कि वह दूने संदेह के साथ मेरे घुटनों से चिपक गई। पहला परिचय कुछ इस तरह हुआ।

कुछ दिन बाद एक दिन सवेरे किसी ज़रूरी काम से मैं बाहर जा रहा था। अचानक देखता हूँ कि मेरी बिटिया दरवाज़े के पास बेंच पर बैठी हुई काबुली से ख़ूब बातें कर रही है। काबुली उसके पैरों के पास बैठा-बैठा मुस्कराता हुआ ध्यान से सब सुन रहा है और बीच-बीच में प्रसंगानुसार अपना मतामत भी खिचड़ी भाषा में व्यक्त करता जा रहा है। मिनी को अपने पाँच साल के जीवन में 'बाबूजी' के अलावा ऐसा धीरज वाला श्रोता शायद ही कभी मिला हो! देखा तो उसका छोटा-सा आँचल बादाम-किसमिस से भरा हुआ है। मैंने काबुली से कहा, “इसे यह स